ISSN 0974-8857

# TULSĪ PRAJÑĀ

(An UGC-recognized Peer-reviewed Quarterly Research Journal of JVBI)

Year-45 • Vol. 177-178 • Issue: January-June, 2018

JAIN VISHVA BHARATI INSTITUTE
A University dedicated to Oriental Studies & Human Values
Ladnun - 341 306, Rajasthan, India

## Contents

### Āgama

Ācārya Mahāprajña 5

### Articles

Preksha Meditation: A Prompt Way of Improving Emotional Intelligence 27
*Prof. Samani Riju Pragya*
*Dr. Samani Shreyas Pragya*

Interpretation- A Hermeneutic Approach to Decipher the Meaning of Symbol 39
*Dr Sadhvi Rajul Prabha (Samani Ramaniya Pragya)*

चेतना की स्थितियों का दार्शनिक विश्लेषण एवं सर्वेक्षण 53
*डॉ सुशिम दुबे*

संस्कृतसन्धानसाहित्यस्य विकासे जैनाचार्याणाम् अवदानम् 63
*डॉ. श्रेयांसकुमारो जैनः*

अशोक के अभिलेखों में वर्णित अहिंसा तत्त्व का विश्लेषण 71
*डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा*

'संयोगितास्वयंवरं' नाटके प्रतिफलित–समाजव्यवस्थायाः अध्ययनम् 85
*श्रीचेता मैत्र*

Āgams: The Main Source of Jain Knowledge 95
*Samani Sanmati Pragya*

*Tulsī Prajñā*
45 (177-178)
ISSN : 0974-8857

# अशोक के अभिलेखों में वर्णित अहिंसा तत्त्व का विश्लेषण

**डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा**

**सारांशिका**

अभिलेख भारतीय इतिहास के अडिग स्तम्भ है। भारत के विभिन्न कालों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन का बिम्ब, इन अभिलेखों में ही सबसे अधिक यथार्थ रूप में दृष्टिगत होता है। अभिलेखों के सन्दर्भ में जहां कहीं भी चर्चा होती है, तो स्वतः ही सम्राट् अशोक का नाम स्मृति में आ जाता है। कलिंग के युद्ध में अशोक ने लाखों जीवों का संहार किया। अनेक जीवों को मृत देखकर स्वयं अशोक का दिल दहल उठा। उसने उसी दिन से रण –युद्ध का त्याग कर धर्म युद्ध करने का संकल्प स्वीकार किया। सर्वप्राणियों के हित और सुख के लिए अहिंसा का मार्ग अपनाया। राज्य में शान्ति एवं अहिंसा को स्थापित करने के लिए विविध कार्य किए गए, जिनकी झलक हमें अशोक के शिलालेखों से प्राप्त होती है।

ईसा पूर्व युगीन अभिलेखों में सर्वाधिक अभिलेख सम्राट् अशोक के द्वारा लिखवाये गये हैं। ये अभिलेख ई.पू. 261 में राज्याभिषेक के 12 वर्ष पश्चात् वृहत्तर भारत में उत्कीर्ण कराये गये हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनके द्वारा सम्राट् अशोक ने प्रजा में अहिंसा के प्रति आस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इन अभिलेखों में क्षमा–नीति, व्यवहार–समता और दण्ड–समता की आदर्श नीतियों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं।

**मुख्य शब्द**

अशोक, अहिंसा, क्षमानीति, आदर्शनीति।

**डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा,** सह–आचार्या, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

सम्राट् अशोक भारतवर्ष का महान शासक रहा है। ई.पू. द्वितीय–तृतीय शताब्दी में सम्राट् अशोक के जन्म होने के अनेक आधार प्राप्त होते हैं, जिनमें ई.पू. 286 में अशोक के पिता बिन्दुसार ने अशोक को वायसराय बनाकर उज्जैन भेजा। ई.पू. 284 में अशोक के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ। ई.पू. 282 में सबसे बड़ी पुत्री संघमित्रा का जन्म हुआ। ई.पू. 270 में अशोक के राज्याभिषेक होने का प्रमाण उपलब्ध है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर अशोक का जन्म ई.पू. तृतीय शताब्दी निश्चित होता है।

मौर्यवंशी सम्राट् अशोक ऐसा प्रथम शासक हुआ, जिसने विविध संघर्षों के बाद अपने साम्राज्य का विस्तार किया और कलिंग के भीषण खूंखार युद्ध के बाद खड्ग युद्ध का सदा–सदा के लिए त्याग कर दिया और आगे से धर्म–युद्ध (अर्थात् सर्वधर्म–समन्वय एवं लोककल्याणकारी कार्य) करते रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। सम्राट् अशोक के जितने भी अभिलेख उपलब्ध हुए हैं, वे सभी उसी के सुपरिणाम हैं और वे जन–मानस को भाव–शुद्धि, ज्ञान–पिपासा की तृप्ति और प्राणि–मात्र की सुरक्षा और सेवा प्रदान करते रहने की प्रेरणा देते हैं।

भारतवर्ष में सम्राट् अशोक के अनेकानेक स्तम्भलेख, शिलालेख, गुहालेख प्राप्त होते हैं, जिन्हें धम्मलेख के नाम से भी जाना जाता है। यद्यपि इन आलेखों को भारतीय कला एवं संस्कृति के सन्दर्भ में पुरातत्त्व वैज्ञानिकों ने अत्यधिक महत्व दिया है। वस्तुतः प्राचीन भारत की कला का इतिहास सम्राट् अशोक से ही प्रारम्भ होता है। अशोक ने ही स्तूप, स्तम्भ तथा गुहाओं का निर्माण करवाकर उन पर अपने सन्देश अभिलेखों के रूप में खुदवाए।

किसी भी देश के इतिहास निर्माण में प्रमुख रूप से 5 प्रकार के साक्ष्यों की आवश्यकता होती है–

1. प्राचीन साहित्य में उपलब्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ–संकेत।
2. ग्रन्थ प्रशस्तियां
3. लोकोक्तियां
4. पुरातात्विक सामग्री एवं
5. शिलालेख, प्राचीन मूर्ति एवं धातुलेख

इनमें से शिलालेखीय साक्ष्य सर्वाधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण माने गये हैं क्योंकि उनमें पुराण–ग्रन्थों के समान पाठ–पाठान्तर नहीं किये जा सकते।

## अहिंसा और क्षमा–नीति :

कलिंग–विजय के बाद सम्राट्–अशोक का हृदय परिवर्तित हुआ। उसने अनुभव किया कि जहां लोगों का वध, मरण और देश–निकाला हो, ऐसा जीतना न जीतने

के तुल्य है। यही सोचकर कलिंग–विजयी सम्राट् अशोक के जीवन में बड़ा परिवर्तन हुआ। उसने निश्चय किया कि वह अब आगे से युद्ध नहीं करेगा। उसने अपने पुत्र–पौत्रों के लिए भी यह शिक्षा प्रदान कराई – ''वें नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींचने के द्वारा ही हो सके, उसमें भी शान्ति और लघुदण्डता से काम लें और धर्म के द्वारा जो विजय हो, उसी को वास्तविक विजय समझें।[1]

अशोक ने पड़ोसी यूनानी–राज्य और सुदूर तमिल इत्यादि को भी निर्भयता प्रदान की और अपने महामात्यों को उसने इस प्रकार आज्ञाएं दीं– ''आप लोग यह जानें, कि जो सीमान्त–देश अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में राजा क्या चाहता है ? मेरी उन के विषय में भी यही इच्छा है कि वे मुझसे डरें नहीं और मुझ पर विश्वास रखें। वे मुझसे सुख ही प्राप्त करेंगे, दुःख नहीं। वे यह भी विश्वास रखें कि जहां तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा राजा उनसे क्षमा का बर्ताव करेगा।''[2]

अशोक ने पुनः आगे लिखा है– ''जितने मनुष्य कलिंग–विजय में मारे गये, मरे या कैदी बनाये गये, उनका शतांश या सहस्रांश भी यदि अब मारा जाए, तो देवताओं के प्रिय को भारी दुःख होगा। देवताओं के प्रिय का मत है कि जो अपकार करता है वह भी क्षमा के योग्य है, उसे भी क्षमा किया जा सके। जो भी अटवियों के विजित प्रदेश हैं, उनसे भी वह अनुनय करता है। और इसलिए वह आटविकों से कहता है कि वे बुरे काम करके लज्जित न हों, व्यर्थ में न मारे जायें। देवानांप्रिय अशोक सब जीवों की अक्षति, संयम, समचर्या और प्रसन्नता चाहता है।''[3]

सम्राट् अशोक ने अहिंसा के आचरण पर पूरा जोर दिया है, क्योंकि हिंसा जीवन को क्रूर और कर्कश बनाती है। हिंसा से मानव दुःखी होता है और उसके फलस्वरूप ही संसार में संघर्ष, अशांति, असहिष्णुता, क्रूरता आदि की भावना पैदा होती है।

अशोक ने इसलिए अपने प्रथम–अभिलेख में ही अहिंसा–नीति का प्रचार किया है। उसने प्राणी–हिंसा और हवन इत्यादि कार्यों में होने वाली हिंसा का निषेध किया है। उसका विश्वास है कि धर्म के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। जैसा कि पहले कहा चुका है, उसने अपनी भोजनशाला में होने वाली हिंसा को रोकने के लिए आज्ञा प्रचारित की कि सैकड़ों प्राणियों की हत्या रोककर केवल दो मयूर और एक मृग ही मारे जायेंगे, शेष प्राणी नहीं, और ये तीनों भी रोज नहीं मारे जायेंगे, कभी कदाचित् ही मारे जायेंगे, और बाद में उसे भी रोक दिया जाएगा।

इस प्रकार सम्राट् अशोक ने शनैः शनैः हिंसा कम करते हुए पशु–हिंसा का पूर्ण निषेध कर दिया था। पशुओं को लड़ाना, उनके साथ निर्दयता का व्यवहार करना भी उसने निन्दनीय बताया। अपने राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में अशोक ने पशु–पक्षियों की हिंसा पर और भी अधिक रोक लगा दी। पशुओं का वध करना, उन्हें दागना या उनके साथ कड़ाई से पेश आना आदि पर भी रोक लगा दी गई थी।

अशोक की इस अहिंसा–नीति से स्पष्ट है कि वह पशु–वध को सर्वथा रोकना चाहता था, क्योंकि व्यर्थ और अकारण होने वाली हिंसा को वह बिल्कुल पसंद नहीं करता था।

अशोक ने विहार–यात्राओं के स्थान पर अपनी धर्म–यात्राओं का प्रचार प्रारम्भ किया। इन धर्म–यात्राओं में श्रमणों एवं ब्राह्मणों का दर्शन, दान, वृद्धों का दर्शन, सुवर्ण–दान, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का अनुशासन एवं धर्म–जिज्ञासा आदि उद्देश्य प्रधान थे। इन सत्कार्यों से स्पष्ट है कि सम्राट्–अशोक ने अपनी अहिंसा–नीति और क्षमा–नीति का यथासम्भव पूर्ण निर्वाह किया।

## धार्मिक पूजा आदि अनुष्ठानों में जीव हत्या पर निषेध

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"[4]– इत्यादि वाक्यों से ऐसी हिंसक वैदिक यज्ञ परम्परा का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इसके अनुसार यज्ञ कार्यों में पशुओं की बलि देना अनिवार्य अंश माना जाता था। यज्ञ पूजा आदि का कार्य होने से वैदिक पुजारी आदि उस क्रिया को हिंसा जैसी पापसूचक क्रिया मानने से निषेध करते थे, क्योंकि वे उसे पुण्य कार्य मानते थे। निर्देशपरक कार्यों में यज्ञादि धार्मिक–अनुष्ठानों में जीवहिंसा का निषेध प्रमुख है।

वह लिखता है **'हिद नो कि (ि) च जिवे अर (भितुप्)रयुहोतवे** पहले मेरे भोजनशाला में भोजनार्थ रोज सैकड़ों हजारों प्राणी मारे जाते थे, किन्तु इस धर्मलिपि के लिखवाये जाते समय अर्थात् राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में ऐसे प्राणियों की संख्या अत्यधिक सीमित कर दी गई हैं। मात्र दो मोर और एक मृग मारे जाते हैं। उनमें भी मृग का प्रतिदिन मारा जाना निश्चित नहीं है। साथ ही, वह अपना यह भी संकल्प व्यक्त करता है कि बाद में ये तीन प्राणी भी भोजन के लिए नहीं मारे जायेंगे। यद्यपि अशोक के युग में खाने–पीने एवं आमोद–प्रमोद आदि के निमित्त भी पशु हिंसा होती थी। जब यह हिंसा धार्मिक क्षेत्रों में प्रवेश पा गई तो **'अहिंसा परमो धर्म'**: की चिरन्तन भारतीय मान्यता के रक्षणार्थ सम्राट् अशोक ने धर्म के नाम पर होने वाली जीव हत्या का निषेध किया। अशोककालीन धर्म का स्वरूप अभी भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा को साथ लिए जीवित है, जिसको परिमार्जित एवं संशोधित करने में **'अहिंसा परमो धर्मः'** के पोषक विचार वाले सतत प्रयत्नशील हैं। ये वर्तमान समाज में धार्मिक कार्यों में होने वाली जीव हत्या को पूर्णतया रोकने के लिए अनेक प्रयत्न करते रहे हैं, जिससे हम यह कह सकते हैं कि ये सभी न केवल अशोक के उस भाव से अनुप्राणित हैं, अपितु इस भाव के साथ अशोक को समाज में उसी रूप में जीवित रखना चाहते हैं।

## अहिंसा और राजनीति

राजा के धर्म–परिवर्तन का प्रसार उसकी सार्वजनिक नीतियों और प्रशासन पर भी पड़ा। कलिंग का युद्ध एक प्रकार से उसके शासन की अंतिम राजनैतिक घटना थी। इस युद्ध में जितनी हिंसा हुई उससे वह अहिंसक बन गया। उसने सब मनुष्यों के बीच शांति की नीति ही नहीं अपनाई, अपितु मनुष्यों और सर्व प्राणि–मात्र के बीच शांति का सिद्धांत अपना लिया। इस प्रकार विगत महायुद्ध जो इतिहास का सबसे रक्तरंजित युद्ध था, शांति की बात मात्र में समाप्त हो गया। कलिंग का युद्ध अशोक के लिए सचमुच ही अंतिम युद्ध था। यद्यपि उस समय तक अनेक जातियां अविजित रही थीं और उनकी ओर से युद्ध के लिए उत्तेजनाएं अवश्य पैदा की गई होंगी तथापि अशोक ने युद्ध के मार्ग पर फिर पैर नहीं रखे। उसकी नीति अब यह हो गई "कोई देवताओं के प्रिय का अपकार भी करे तो वे यदि क्षमा के योग्य हैं तो क्षमा कर देंगें[5] जो सीमांत जातियां अविजित रह गई थीं, उनको राजा ने कहा "उनके प्रति मैं चाहता हूँ कि वे मुझसे न डरें, मुझ पर विश्वास करें, मुझसे सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें"[6] यह सभी राज्यों की समता का सिद्धान्त है। वे चाहे बड़े हों या छोटे, प्रभुसत्ता और स्वतंत्रता की दृष्टि से सभी समान हैं। संसार में आज भी सिद्धांत को कार्यान्वित करने की कोशिश की जा रही है। अशोक ने इसकी कल्पना की और इसे कार्यान्वित भी कर दिखाया। बड़े आत्म–संतोष से अन्यत्र वह कहता है "अब मेरा घोष (युद्ध के नगाड़े का स्वर) धर्मघोष में बदल गया है"[7] इस प्रकार भारत के अनेक प्रांत और जातियां अविजित ही छोड़ दी गई। अशोक यदि चाहता तो बड़ी आसानी से उन्हें जीत सकता था। ये जातियां थी, चोल, पांड्य, सतियपुत्र और केरलपुत्र[8], यवन (यूनानी), कंबोज, नाभक के नाभपति, भोज और पितनिक, आंध्र और पुलिंद। ये सभी जातियां उसके विजित प्रदेश की सीमाओं पर स्थित बतलायी गयी हैं[9]। वह इस बात के लिए उत्सुक था कि वह कैसे यह सुनिश्चित करे कि "मेरे बेटे और पोते नई विजय न करें"। अब वह इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था कि "धर्म–विजय ही सबसे बड़ी विजय है, न कि शस्त्र–विजय"। अब वह स्वतंत्र जातियों के भ्रातृत्व का विश्वासी हो गया था किन्तु " उन्हें बुरे मार्ग का परित्याग कर देना चाहिए ताकि वे मृत्यु–दण्ड से बचे रहें"[10]। वह धर्म के भाईचारे में विश्वास करता था।

## सर्व प्राणी मात्र के प्रति अंहिसा

एक सर्वाधिकार संपन्न राजा के रूप में उसने युद्ध का परित्याग करने का आदेश किया और वह 'अहिंसा' के सिद्धान्त का अनुगामी बन गया। यह अहिंसा मनुष्यों तक ही सीमित न थी, बल्कि इसकी परिधि में क्षुद्र मूक पशु और पक्षी भी

आ गए । अशोक ने अहिंसा का अनुगमन कर बौद्धधर्म के प्रसार में अप्रत्यक्ष रूप से भी योग दिया। उसके अभिलेखों से उसके अहिंसावादी विचार पर काफी प्रकाश पड़ता है। पंचम स्तम्भलेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने अभिषेक के 26 वर्ष बाद उन अनेक निरीह–प्राणियों का वध वर्जित कर दिया, जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते थे और न खाए जाते थे। इसके साथ ही उसने यह भी आदेश दिया कि गर्भवती व दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ या सुअरी को तथा इनके बच्चों को, जो 6 माह तक के हों, नहीं मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया नहीं करना चाहिए, जीवित–प्राणी सहित भूसी को नहीं जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग नहीं लगानी चाहिए। एक जीव को मारकर, दूसरे जीव को नहीं खिलाना चाहिए।[11] प्रथम शिलालेख में कहा गया है कि किसी भी जीव को मारकर होम न किया जाए और हिंसात्मक–समाज का आयोजन न किया जाए।[12]

इस सिद्धान्त का पूरा विस्तार बाद में ई.पू. 242 में हुआ जब उसने आदेश निकालकर अनेक जीवों के वध पर प्रतिबंध लगा दिया। इनमें उन "सभी चतुष्पद हैं जिनका सवारी या भोजन में प्रयोग नहीं होता", जैसे गाय को भारत में बोझ ढोने या मारकर भोजन में प्रयोग करना निषिद्ध है। गाय के अतिरिक्त अनेक पक्षी और दूसरे पशु भी अवध्य घोषित किए गए। कुछ पर्वो पर, बौद्ध उपोसथो (उपवासों) के दिन मछलियों का वध, घोड़ो और बैलों का दागना और "बैलों, बकरों, मेढों, सुअरों या दूसरे जानवरों को वध करने" का भी निषेध किया गया।[13] इन उपायों के साथ ही साथ उसने मनुष्यों और पशुओं के कष्टों के निवारणार्थ राज्य की ओर से चिकित्सालय खुलवाए और वैद्यों का प्रबंध किया और औषधि–उद्यानों का भी प्रबन्ध कराया जिसमें चिकित्सा के लिए औषधियां, जड़ी–बूटिंया, फल आदि लगाये गए थे। जहाँ ये उपलब्ध न थे वहाँ बाहर से मंगाकर लगाये गए थे[14] (चट्टान लेख 2)। पशुओं की चिकित्सा पर जितना जोर दिया गया है, उससे यही ज्ञात होता है कि अशोक के समय में पशु–चिकित्सक और चिकित्सालय भी अति संख्या में मौजूद रहे होंगे।

## अहिंसा और धार्मिक–आस्था

चट्टान लेख 2 से यह भी निश्चित हो जाता है कि अशोक ने अपने अभिषेक के दसवें वर्ष में अर्थात् ई.पू. 260 के बाद अपना धार्मिक प्रचार प्रारंभ किया। उसके अन्य लेखों में उसके धर्म संबंधी विकास के विभिन्न चरण दिये हुए हैं। इस संबंध में उसके अभिषेक का आठवां वर्ष अर्थात् ई.पू. 262 सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसने उसके जीवन की दिशा ही बदल दी। अशोक के 13वें चट्टान लेख से पता चलता है कि इसी वर्ष में उसने कलिंग को जीता था। इस युद्ध में धन–जन की अपार क्षति हुई थी और वीर कलिंग के निवासियों को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे। उन्होंने अपनी

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए डटकर संघर्ष किया था। इस युद्ध के कारण अशोक के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का पुजारी बन गया। अब तक (अर्थात् ई.पू. 262 से पूर्व) वह बौद्ध धर्म का उपासक था। उसने इसके लिए कोई विशेष यत्न नहीं किया था। वह अढ़ाई साल से अधिक उपासक बना रहा। इस बीच बौद्ध धर्म के उपदेशों के विपरीत वह विजयों की हिंसा में लिप्त रहा। ई.पू. 265–262 के बीच बौद्ध धर्म के प्रति उसकी उदासीनता की स्थिति बनी रही। ई. पू. 262 के बाद बौद्ध धर्म में उसकी आस्था तीव्र हो गई। फिर वह अपने जीवन में अहिंसा का पुजारी बन गया। धर्म में रूचि (धर्मकामता) और उसके धर्मोपदेश (धर्मानुशास्ति) में वृद्धि हुई। लघु चट्टान लेख 1 के अनुसार उसके हृदय–परिवर्तन में 'एक साल से अधिक' ही लगा अर्थात् यह ई.पू. 260 में संपन्न हुआ। इस नये लेख के अनुसार धार्मिक प्रचार (धर्मानुशास्ति) का प्रवर्तन बड़े तीव्र पराक्रम के साथ प्रारंभ किया[15]। उसके प्रयत्नों के फल भी शीघ्र ही मिलें। इस लेख में इसी का नए व्योरों के साथ वर्णन है। अब तक इस संबंध में जो कुछ, ज्ञात था उसकी पुष्टि होने के अतिरिक्त इस लेख में कुछ नये तथ्य भी हैं। इस संबंध में ल. च. ले. में सिर्फ इतना ही लिखा है–

**मनुष्य अब देवताओं से अधिक घुलमिल गए हैं।**
**(अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपसि मिसा देवेहि)।**

जैसा कि चट्टान लेख 8 से विदित होता है प्रायः इसी के आसपास अपने अभिषेक के दस वर्ष के बाद अशोक बौद्ध धर्म के तीर्थों, जैसे गया आदि की यात्रा पर निकला था। इस लेख से अशोक के धर्मोपदेश के कार्यों (च. ले. 13 में इसके लिए धर्मानुशस्ति शब्द का प्रयोग हुआ है) पर कुछ नया प्रकाश पड़ता है। एक पाठ से विदित होता है कि उसने अपने भोजन के लिए पशुहत्या बंद कर अहिंसा का उदाहरण प्रस्तुत किया। अब वह शाकाहारी हो गया। उसका उदाहरण (तस्य च दर्शनात्) देखकर जन सामान्य भी हिंसा (विहिंसा भूतानाम्) से विरत होने लगे। इसमें लुब्धक (बहेलिये) और कैवर्त्त (केवट जो मछली मारने का काम करते हैं) भी शामिल थे जिनका पेशा ही हिंसा था।

अशोक के धर्म–प्रवर्तन का जो परिणाम निकला, उसका वर्णन इस लेख में दिया गया है। अब लोग अधिक धार्मिक (धर्मयुत) हो गये और सभी प्राणियों का हित और सुख अहिंसा के कारण बढ़ गया। अब लोगों के कष्टों और कठिनाइयों में अत्यधिक न्यूनता हो गई और सर्वत्र शांति, प्रीति और संयम का प्रचार हो गया। अहिंसा के आचरण के कारण अब लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा हो गया। अब छोटे लोग माता–पिता और अन्य गुरूजनों का अधिक आदर करने लगे। इससे पारिवारिक जीवन अधिक सुखद हो गया। धर्म और अहिंसा के आचरण ने लोगों के सामाजिक उन्नयन में सर्वदा के लिए योगदान दिया।

इस प्रकार अशोक शांति का अग्रदूत सिद्ध होता है। उसने ठीक ही पहचान लिया था कि शांति की नींव अध्यात्म और अहिंसा पर आधारित धर्म ही हो सकता है। यही "विश्व में शांति और प्रीति के युग का प्रारंभ कर सकता है।" उसने अनुभव किया युद्धों का जन्म मनुष्यों के मन में ही होता है। (प्रीति रस के विपरीत) घृणा और संघर्ष को निकालकर मन को शुद्ध करना होगा और इनके स्थान पर लोगों के मन में प्रीति की स्थापना करनी होगी। अशोक ने अपने राज्य में शांति स्थापित की। इसका आधार धर्म–चक्र को बनाया गया। अशोक ने जिन आदर्शों की स्थापना की थी, उनकी प्राप्ति के लिए संसार अभी तक संघर्ष कर रहा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा के धर्म का बड़ा व्यापक प्रसार हुआ। इससे घर और परिवार के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इससे छोटे अपने गुरूजनों का सम्मान करने लगे। सभी लोगों के बीच सम्यक् संबंधों (संप्रतिपत्ति) का विकास हुआ। समाज अब अधिक सुरक्षित हो गया। अब वह हिंसा के भय से मुक्त हो गया। सर्वत्र शांति स्थापित हो गई और प्रीति बढ़ी। अशोक ने सर्वप्राणियों के हित और सुख के लिए अहिंसा का मार्ग अपना लिया।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चूका है कंलिग के युद्ध में अशोक ने जो लाखों का संहार किया था, उसमें उसका स्वयं का हृदय दहल उठा था। उसी समय से उसने रणयुद्ध का त्याग कर धर्मयुद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी, जिसकी झलक उसके अभिलेखो में मिलती है। प्रजाजनों की दैनिक सुविधाओं, अनुशासन, प्रशासनिक व्यवस्था तथा नगर– विकास सम्बन्धी जो–जो कार्य सम्राट् अशोक ने किये थे, प्रतीत होता है कि वर्तमानकालीन PWD City Corporation आदि के कार्य–कलाप उसी के अनुकरण है। इन सबसे प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध इतिहासकार ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'इतिहास की रूपरेखा' में लिखा है– 'इतिहास के वर्गो–वर्गो में भीड़ लगाए सैकड़ो राजा–महाराजाओं के नामों मे सम्राट् अशोक का एकमेव नाम नक्षत्र के समान दमकता प्रतीत होता है। बोल्गा (रूस) नदी से लेकर जापान तक लोगो के मन में आदर–सम्मान का भाव है। चीन, तिब्बत, वर्मा, मंगोलिया, श्रीलंका भूटान, सिक्किम, तथा भारत में इसकी महानता की स्मृतियाँ अभी तक जीवित हैं। कांस्टान्टाइन या शार्लमेन के केवल नाम ही लोगों को परिचित हैं, किन्तु उनसे कहीं अधिक लोगों को अशोक के नाम से केवल परिचय ही नहीं, अपितु उनकी स्मृति के प्रति भी आदर–भाव है।

## व्यवहार–समता और दण्ड–समता की आदर्श–नीति

सम्राट् अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में उत्कीर्ण कराए गए अभिलेख में बताया है– "यह अभीष्ट है कि व्यवहार–समता और दण्ड–समता हो।" सम्राट् अशोक ने वस्तुतः समस्त भारत को राजनैतिक दृष्टि से एक कर दिया था।

व्यवहार और दण्ड की इस समता–नीति ने आन्तरिक एकता भी उत्पन्न करने का कार्य किया। प्रियदर्शी राजा यों कहते हैं .....मेरे लजुका (रज्जुक) सैकड़ो–हजारों प्राणियों के ऊपर नियत हैं। उन्हें मैंने जो अभिहार और दण्ड में आत्म–निर्भरता प्रदान की है, वह इसलिए कि वे आत्म–विश्वास के साथ निर्भय होकर कार्य करें। समस्त जनपद और जनहित के सुख का उपधान और अनुग्रह उसी प्रकार करें, जिस प्रकार माता के हाथ में बच्चे को सौंपकर माता निश्चिन्त हो जाती है। वैसे ही मैं भी रज्जुकों को नियुक्त कर सुखी हूं। मुझे विश्वास है कि मेरे ये रज्जुक प्रजा को सभी प्रकार से सुखी, स्वतंत्र और आत्म–निर्भर बनाएंगें।"

तात्पर्य यह है कि रजुक राज्य के बड़े अधिकारी थे, जो जनपदों पर शासन करते थे और वे दण्ड और व्यवहार में जनता के साथ निष्पक्ष एवं समान व्यवहार करते थे।

आधुनिक समय में भारतीय जनता अनेकविध मंगलाचार करती है। मंगलाचार प्रायः सन्तान के जन्म, कन्या के विवाह, विपत्ति के समय और किसी प्रियजन के जाने पर किए जाते हैं। शुभ–अशुभ में विश्वास मानव समाज में आदिकाल से बद्धमूल है। धर्मलिपियों द्वारा सूचित होता है कि अशोक के समय में भी मंगलाचारों में विश्वास जनता में बद्धमूल थे। पर अशोक इन्हें क्षुद्र और निरर्थक समझता था। वह इन मंगलाचारो के विरूद्ध नहीं था, पर उसका विचार यह था कि ऐसे मंगलाचार करने चाहिए जो कि अल्पफल देने वाले न होकर महाफल देने वाले हो। अशोक की दृष्टि में 'धर्ममंगल' महाफल प्रदान करने वाले होते हैं। इनमें दासों और भृतकों के प्रति समुचित व्यवहार, गुरूजनों का आदर, प्राणियों की अहिंसा और श्रमण–ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य मंगल हैं वह इहलौकिक हैं। किंतु धर्ममंगल जो हैं, वे काल से परिछिन्न नहीं हैं। यदि इहलोक में उनसे अभीष्ट सिद्धि न भी हो, तब भी परलोक में अनन्त पुण्य होता है।

## प्रदर्शन की दृष्टि से होने वाले आयोजनों (समाज) का निषेध

'समाज' एक प्रकार का सामूहिक उत्सव या सम्मेलन था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिस सन्दर्भ में इस शब्द का योग किया गया है, उससे इस पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस शब्द का प्रयोग निम्नांकित सन्दर्भों में हुआ है, **'यात्रा–समाजोत्सव–प्रवहणानि, उत्सव–समाज–यात्राषु–समाजाभ्यां, समाजे दैवल–प्रैत– कार्योत्सव–समाजेषु, देश–दैवतसमाजोत्सव–विहारेषु।**[16] इससे स्पष्ट है कि समाज एक प्रकार का विलास और आमोद–प्रमोदपूर्ण उत्सव था। जिसमें गाना, बजाना, नृत्य, मांस, मदिरा आदि का प्रयोग उन्मुक्त रूप से होता था। डॉ. दत्तात्रेय रामकृष्ण भंडारकर ने महाभारत, हरिवंश और बौद्ध साहित्य का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि प्राचीन भारत में दो प्रकार का समाज होता था। एक प्रकार के समाज में शुद्ध मनोरंजन होते थे, परन्तु दूसरे प्रकार में

मांस–मदिरा आदि भी चलता था। दूसरे प्रकार के समाज को अशोक ने बन्द कर दिया था। प्रथम प्रकार के समाज में परिवर्तन–परिवर्धन करके अशोक ने धर्म का माध्यम बनाया। अशोक के 'गिरनार अभिलेख' में सामाजिक सुधार के जो बिन्दु दिये गये हैं, उनमें कोई साम्प्रदायिक दृष्टि नहीं हैं, अपितु प्राणीमात्र का हित प्रधान है। प्रथम अभिलेख में अशोक लिखता है कि **'न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवनांपियो पियदसि राजा'**[17] अर्थात् 'समाज' का आयोजन नहीं करना चाहिये, क्योंकि अशोक की दृष्टि में समाजों के आयोजन में बहुत प्रकार के दोष होते हैं। किन्तु अशोक का दृष्टिकोण कोरा प्रतिक्रियावादी नहीं था। सामाजिक बुराइयों के निषेध के साथ उसने अपना रचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया क्योंकि सामाजिक मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य को पारस्परिक मेल–मिलाप, सौहार्द एवं रचनात्मक संगठन की दृष्टि से ऐसे उत्सव एवं समाज का आयोजन करना चाहिए । अशोक ने उनमें आयी हुई विकृतियों को दूरकर इनका आदर्श रीति से आयोजन करने की परम्परा प्रवर्तित की, जिसकी सूचना वह शिलालेख में इन शब्दों में देता है **'अस्ति पितु एक चा समाजा साधुमता देवनंपियस पियदसिनो राजो।'** आमोद–प्रमोद, भोग–विलास का सार्वजनिक आयोजन, समाजों के कारण हिंसा, सुरापान तथा भेदभाव आदि के कारण इन पर नियंत्रण लगे इसके लिए **'न च समाजो कतव्यो'** दोषों को ध्यान में रखकर उसने इन आयोजनों (समाज) का निषेध किया था।

## धार्मिक–सौहार्द

अशोक ने अपने धर्म एवं सम्प्रदाय की प्रशंसा एवं दूसरे के धर्म की निन्दा न हो सके, इसके लिए अपने शासन काल में वाक्–संयम की व्यवस्था की थी। जिससे कि लोग अपने धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे के धर्म के बारे में कुछ नहीं कहेंगे, अर्थात् दूसरों की निन्दा से लोग क्षुद्र या लघु हो जाते हैं। लोग किसी भी धर्म की निन्दा न करें बल्कि सभी लोग सभी का उपकार करें। इसका मूल "वाणी का संयम कैसे हो", इस प्रश्न का समाधान है कि लोग अपने धर्म के प्रति अधिक अनुराग रखने के कारण वार्तालाप या चर्चा के अवसर पर स्वसम्प्रदाय का आदर भाव रखना और पर–सम्प्रदाय के प्रति निन्दा का भाव प्रकट करते हैं। इसके विपरीत प्रजा को अवसर निकालकर परसम्प्रदाय का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरों के सम्प्रदाय को भी क्षति नहीं पहुँचती है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा, सद्गुणों का गोपन और असद् (जो गुण नहीं हैं) गुणों को प्रकट करने से जीव के नीच गोत्र का बंध होता है। इसलिए एक दूसरे के धर्म को सुनने और सुनाने की इच्छा के विचार से

'समवाय' प्रशंसनीय है। क्योंकि देवताओं के प्रिय सम्राट् अशोक चाहता है कि सभी धार्मिक सम्प्रदाय ज्ञान से पूर्ण हो। जो लोग इस या उस धर्म से प्रेम रखते हैं उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि 'देवताओं के प्रिय दान या सम्मान को इतना नहीं मानता अपितु सब सम्प्रदायों की वृद्धि हो इसे महत्त्व देता है।[18]

इस उद्देश्य से धर्ममहामात्रों, व्रजभूमिकों और अन्य अधिकारी वर्ग की नियुक्ति की है, जिससे अपने सम्प्रदाय की उन्नति और धर्म का प्रकाश फैलता रहे। यही भावना अशोक ने धर्म के माध्यम से तथा वाक्संयम के द्वारा पालन करने के निर्देश से अपने गिरनार अभिलेख में प्रकट की है।

इस प्रकार हम अभिलेखों में निहित अहिंसा तत्त्व को देख सकते हैं। यथा–

1. से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती एव प्रा–
2. णा आरभरे सूपाथाम द्वो मोरा एको मगो सो पि
3. मगो न ध्रुवो एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे
4. इध न किं
5. चि जीवं आरभित्या प्रजूहितव्यं
6. पुरा महानसम्हि
7. देवानं प्रियस प्रियदसिनो रायो अनुदिवसं ब–
8. हूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय
9. अतिकातं अंतरं बहूनि वाससतानि वडितो प्राणारंयो विहिसां च भूतानं ञातीसु 2. असंप्रतिपती[19] (चतुर्थ अभिलेख गिरनार)

## उपसंहार

वर्तमान सन्दर्भों को ध्यान में रखकर अशोक के अभिलेखों में निहित उपर्युक्त सामाजिक बिन्दुओं पर विचार करने से एक नवीन तथ्य यह प्राप्त होता है कि समाज में शासन, चिकित्सा, संस्कृति, सर्व–धर्म–समभाव, वाक्संयम तथा लोकव्यवहार आदि सभी विचारों को स्थापित करने से एक अभूतपूर्व परिवर्तन वर्तमान समाज में आ सकता है। हमारे देश में अशोक के आदर्श धर्मलेखीय प्रतिमानों को स्थापित किया जाए तो साम्प्रदायिक दंगे, आपसी वैमनस्य, चोरी, वर्गभेद, राष्ट्रव्यापी भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अशोक के सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

भारत सरकार द्वारा अशोक के अभिलेखों में प्रतिपादित विषयों को ध्यान में रखकर इसके लिए कठोर कानून बनाकर समाज में लागू किया जाये, तथा इन बातों को संवैधानिक रूप से भी महत्त्व दिया जाए। सामाजिक भेद–भाव, आपसी वैमनस्य, विदेशनीति, आपसी भाईचारा, सुसंगठित समाज–निर्माण के साथ–साथ

राष्ट्र–निर्माण में सम्राट् अशोक के अभिलेखों में निहित प्रमुख तत्त्वों की उपयोगिता वर्तमान सन्दर्भों में बहुत ही आवश्यक है।

## संदर्भ सूची

1. तेरहवां–शिलालेख, पं. 10–11
2. द्वितीय कलिंग अभिलेख
3. तेरहवां–शिलालेख
4. निरूक्त अ. 3 पाद–7) 'यज्ञार्थ पश्वः सृष्टाः' (मनुस्मृति)
5. चट्टान लेख,पं.3
6. कलिंग लेख,पं.2
7. चट्टान लेख,पं.1
8. चट्टान लेख,पं.2
9. चट्टान लेख,पं.5
10. चट्टान लेख, पं.13
11. पंचम स्तम्भलेख, देहली–टोपरा
12. प्रथम शिलालेख, गिरनार
13. चट्टान लेख,पं.2
14. लघु चट्टान लेख,पं.2
15. (लघु च. ले. 1)
16. अर्थशास्त्र, 2.21, 2.25, 5.2, 13,3,5
17. गिरनार शिलालेख –1
18. गिरनार शिलालेख –1
19. गिरनार अभिलेख –4

## संदर्भ


1. उपाध्याय डॉ. वासुदेव– गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1968
2. उपाध्याय, डॉ. वासुदेव–प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, 1961
3. औझा, पं. गौरीशंकर हीराचन्द–मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, 1928
4. कत्रे, एस.के.– प्राकृत भाषाएं और भारतीय संस्कृति में उनका अवदान, जयपुर, 1972
5. काणे, पी.वी.–धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड 1–5, लखनऊ
6. कृष्ण कुमार–प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन, ए–1/32, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली, 1993

7. कौटिल्य–अर्थशास्त्र, बम्बई, 1907
8. गुप्त, एस.पी. एवं रामचन्द्रन, के.एस. गोयल, श्रीराम– गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984
9. गुप्त, परमेश्वरी लाल– प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, वाराणसी, 1970
10. गोयल, श्रीराम एवं गुप्त, एस.के.–मगध साम्राज्य का उदय, दिल्ली, 1980
11. गोयल, श्रीराम–प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड–1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982
12. पाण्डेय, डॉ. राजबली–अशोक के अभिलेख, ज्ञान मण्डल लि., वाराणसी, सं. 2022
13. पाण्डेय, प्रो. रमेश कुमार, सम्पा.–प्राकृत भाषा अभिलेख, श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई, दिल्ली, 2014
14. फ्लीट, जॉन केथफुल– भारतीय अभिलेख संग्रह (खण्ड 3), राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1974
15. मजूमदार, प्रो. प्रभातकुमार–भारत के प्राचीन अभिलेख, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2006
16. मुखर्जी, राधाकुमुद–अशोक, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1985
17. विद्यालंकार, सत्यकेतु–प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली
18. विद्यालंकार, सत्यकेतु–मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली, 2000
19. Bhaṭṭācārya, A.K. Ray, K.K.- A Corpus of Dedicatory Inscriptions from Temples of West Bengal, Navava, Calcutta, 1982.
20. Hultj- Inscription of Ashok
21. Jas. Burgess (Editor), Epigraphia Indica, Volume-II, Motilal Banarsidas, Delhi,1970
22. Joly, R.-Nepalis Inscription in the Good Characters, Rome, 1956
23. Pāṇḍeya, Dr. Rājbali-Historical and Literary Inscriptions, Varanasi, 1962
24. Sarkar, D.C.-Select Inscription Bearing on Indian History and Civilization, Calcutta, IInd Edition, 1965